श्री गोम्मटसार कर्मकांड

अधिकार 9- कर्म-स्थिति रचना-सद्भाव अधिकार

Presentation Developed By:
Smt Sarika Vikas Chhabra

आउट्ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणा असंखलोगमिदा ।
णामागोदे सरिसं, आवरणदु तदियविग्घे य ॥947॥

- अर्थ—आयु के स्थिति-बंधाध्यवसायस्थान सबसे कम होने पर भी यथायोग्य असंख्यात-लोकप्रमाण हैं ।
- उनसे पल्य के असंख्यातवें भाग गुणे नाम-गोत्र – इन दोनों के स्थिति-बंधाध्यवसायस्थान हैं । वे परस्पर समान हैं ।
- उनसे भी पल्य के असंख्यातवें भाग गुणे ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, अंतराय – इन चारों के स्थिति-बंधाध्यवसायस्थान हैं । परन्तु वे परस्पर में समान जानने चाहिये ॥947॥

www.JainKosh.org

सव्वुवरि मोहणीये, असंखगुणिदक्कमा हु गुणगारो ।
पल्लासंखेज्जदिमो, पयडिसमाहारमासेज्ज ॥948॥

- अर्थ—उनसे पल्य के असंख्यातवें भाग गुणे किंतु सबसे अधिक मोहनीयकर्म के स्थिति-बंधाध्यवसायस्थान हैं ।
- इस प्रकार प्रकृतियों के स्थितिभेदों की अपेक्षा तीनों जगह क्रम से असंख्यात गुणे स्थिति-बंधाध्यवसायस्थान जानने चाहिये ।
- यहाँ पर गुणकार का प्रमाण पल्य का असंख्यातवां भाग जानना ॥948॥

www.JainKosh.org

स्थितिबंध-अध्यवसाय स्थान

सर्व मूल प्रकृतियों के अपने-अपने उदय से उत्पन्न

आत्मा के परिणाम

अपने-अपने स्थितिबंध के कारण हैं ।

उन्हें स्थितिबंध-अध्यवसायस्थान कहते हैं ।

ये उत्तर प्रत्यय कहलाते हैं ।

www.JainKosh.org

सर्व कर्मों के स्थितिबंध-अध्यवसायस्थान

कर्म	स्थितिबंध-अध्यवसायस्थान	संदृष्टि
आयु	असंख्यात लोक	$\equiv \partial$
नाम-गोत्र	असंख्यात लोक $\times \frac{\text{प}}{\text{असं}}$	$\equiv \partial \times \frac{\text{प}}{\partial}$
तीसीय	असंख्यात लोक $\times \frac{\text{प}}{\text{असं}}$	$\equiv \partial \times \frac{\text{प}}{\partial} \times \frac{\text{प}}{\partial}$
मोहनीय	असंख्यात लोक $\times \frac{\text{प}}{\text{असं}}$	$\equiv \partial \times \frac{\text{प}}{\partial} \times \frac{\text{प}}{\partial} \times \frac{\text{प}}{\text{असं}}$

www.JainKosh.org

प्रश्न- जब मिथ्यात्व, असंयम, कषायरूप प्रत्यय से ही कर्म का बंध होता है, तो स्थितिबंध-अध्यवसायस्थान असंख्यात गुणे किस प्रकार हैं ?

उत्तर- मिथ्यात्व आदि प्रत्यय मूल-प्रत्यय हैं ।

उनकी अपेक्षा यहाँ स्थितिबंध अध्यवसाय नहीं कहे हैं ।

सर्व प्रकृतियों के उदय अपने-अपने बंध के कारण हैं ।

इस प्रकार के प्रत्यय (कारण) उत्तर-प्रत्यय कहलाते हैं ।

इनकी अपेक्षा अध्यवसाय-स्थानों में असंख्यात गुणापना पाया जाता है ।

www.JainKosh.org

प्रश्न- बीसीय से तीसीय के स्थिति भेद कुछ अधिक हैं, असंख्यात गुणे नहीं । तीसीय से मोहनीय के स्थितिभेद संख्यात गुणे हैं, असंख्यात गुणे नहीं । तब इनके अध्यवसायस्थान असंख्यात गुणे कैसे?

उत्तर- बीसीय के उदयस्थानों से तीसीय के उदयस्थान असंख्यात गुणे हैं ।

इन उदयस्थानों से उत्पन्न जीव परिणामों को ही अध्यवसायस्थान कहा है ।

इसलिए असंख्यातगुणे उदयस्थान होने से अध्यवसायस्थान भी असंख्यात गुणे हो जाते हैं ।

इसी प्रकार सर्व कर्मों के स्थितिबंध अध्यवसायस्थानों के अल्प-बहुत्व का कारण जानना चाहिये ।

www.JainKosh.org

अवरट्ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणा असंखलोगमिदा । अहियकमा उक्कस्सट्ठिदिपरिणामोत्ति णियमेण ॥949॥

- अर्थ—विवक्षित मोहनीय कर्म की जघन्य स्थिति अंतःकोटीकोटी सागर है । इस जघन्य स्थितिबंध के कारणभूत अध्यवसायस्थान (परिणामों के स्थान) असंख्यातलोक प्रमाण हैं ।
- उससे आगे प्रत्येक स्थिति बंध के अध्यवसायस्थान उत्कृष्ट स्थितिपर्यंत एक-एक चय क्रम से अधिक-अधिक नियम से जानने चाहिये ॥949॥

प्रत्येक स्थिति-भेद के लिए अध्यवसायस्थान

स्थिति-भेद	स्थिति का प्रमाण	अध्यवसायस्थान प्रमाण
जघन्य स्थिति बंध	अंत:को-2 सागर	असंख्यात लोक
2^{nd} स्थितिबंध	अंत:को-2 सागर + 1	असंख्यात लोक + चय
3^{rd} स्थितिबंध	अंत:को-2 सागर + 2	असंख्यात लोक + चय + चय

ऐसे 1-1 समय बढ़ती हुई स्थिति भेद के लिए 1-1 चय बढ़ते हुए अध्यवसायस्थान पाये जाते हैं।

एक स्थिति बंध को बांधने योग्य जो परिणाम हैं, वे असंख्यात लोक प्रमाण हैं ।

जघन्य स्थिति को बांधने योग्य परिणाम सबसे कम हैं, तब भी $\equiv \partial$ हैं ।

(जघन्य स्थिति + 1) समय प्रमाण स्थिति बांधने योग्य परिणाम और भी अधिक हैं । एक चय अधिक है ।

ऐसे प्रत्येक बढ़ती हुई स्थिति को बांधने के योग्य परिणाम भी बढ़ते जाते हैं । उत्कृष्ट 70 को-2 सागर प्रमाण स्थिति बांधने योग्य परिणामों की संख्या सबसे अधिक हैं ।

स्थितिबंध-अध्यवसायस्थानों की गुणहानि

इन सारे स्थिति-भेदों के स्थितिबंध-अध्यवसायस्थान गुणहानिरूप बनते हैं ।

जघन्य स्थिति के अध्यवसायस्थानों से प्रारंभ करके जहां तक स्थानों की संख्या दुगुनी होती है, वह प्रथम गुणहानि होती है ।

दुगुने हुए स्थान से पुनः दुगुना होने तक द्वितीय गुणहानि होती है ।

इस प्रकार दुगुणे-दुगुणे होते हुए सर्व अध्यवसायस्थान गुणहानि रचनावत् दिखाई देते हैं ।

जैसे स्थिति की निषेक-रचना में गुणहानि आयाम, निषेक, नाना गुणहानि आदि कहा था, वैसे ही वे सारी संज्ञायें यहाँ भी होती हैं ।

स्थितिबंध-अध्यवसायस्थानों की गुणहानि रचना में संज्ञाएँ

स्थिति

- विवक्षित कर्म के सारे स्थिति के भेद ।
- जैसे मोहनीय के सारे स्थिति के भेद (70 को-2 सागर – अंत:को-2 सागर) + 1 = संख्यात पल्य हैं। यह स्थिति भेद ही यहाँ स्थिति के रूप में राशि है ।

द्रव्य

- विवक्षित कर्म के सर्व अध्यवसायस्थानों की संख्या
- ये अध्यवसायस्थान ही प्रत्येक स्थिति भेद में दिये जाते हैं ।

गुणहानि आयाम

- जितने स्थिति भेद तक प्रथम निषेक से दुगुना नहीं हो जाता, वह यहाँ गुणहानि आयाम का प्रमाण है । $\frac{\text{स्थिति}}{\text{नाना गुणहानि}}$ = गुणहानि आयाम

www.JainKosh.org

स्थितिबंध-अध्यवसायस्थानों की गुणहानि रचना में संज्ञाएँ

नाना गुणहानि

- कुल गुणहानियों की संख्या

चय

- जितने-जितने अध्यवसायस्थान एक स्थिति भेद से दूसरे स्थिति भेद में अधिक पाये जाते हैं, वह यहाँ चय है ।

भावार्थ – जैसे पूर्व में कर्म परमाणुओं को एक-एक स्थिति में बांटा था, वैसे यहाँ अध्यवसायस्थानों (परिणामों) को स्थिति-भेदों में बांटा है । वहाँ निषेक का अर्थ कर्म परमाणुओं की संख्या होता है । यहाँ निषेक का तात्पर्य अध्यवसायस्थानों की संख्या है ।

अहियागमणणिमित्तं, गुणहाणी होदि भागहारो दु ।
दुगुणं दुगुणं वड्ढी, गुणहाणिं पडि कमेण हवे ॥950॥

- अर्थ—विवक्षित गुणहानि में अधिक (चय) का प्रमाण लाने के लिये अंत के निषेक में दो गुणहानि का भाग दिया जाता है ।
- उससे आगे हर एक गुणहानि के प्रति क्रम से दुगुना-दुगुना चय का (वृद्धि का) प्रमाण होता है ॥950॥

चय का प्रमाण

$$\frac{\text{गुणहानि का प्रथम निषेक}}{\text{गुणहानि} + 1}$$

$$\frac{9}{8+1} = \frac{9}{9} = 1$$

अथवा

$$\frac{\text{गुणहानि का अंतिम निषेक}}{\text{दो गुणहानि}}$$

$$\frac{16}{8\times2} = \frac{16}{16} = 1$$

नोट – यहाँ चय बढ़ते-बढ़ते स्थान हैं । अत: निषेक रचना में कही हुई जो अंक संदृष्टि है, वह यहाँ अंत से लेकर आदि तक चलाना ।

अर्थात् 9 संख्या को प्रथम गुणहानि का प्रथम निषेक समझना।

16 को प्रथम गुणहानि का अंतिम निषेक समझना ।

18 को द्वितीय गुणहानि का प्रथम निषेक समझना ।

इस प्रकार 512 को अंतिम गुणहानि का अंतिम निषेक समझना ।

इसी कारण से उपर्युक्त सूत्र के उदाहरण में 9 को प्रथम निषेक एवं 16 को अंतिम निषेक कहा है ।

आगे-आगे की गुणहानि में निषेक, द्रव्य, चय दुगुणे-दुगुणे होते जाते हैं ।

जैसे प्रथम गुणहानि का चय 1 है, तो द्वितीय गुणहानि का चय $1 \times 2 = 2$ होता है । ऐसे अंतिम गुणहानि तक जानना चाहिये ।

ठिदिगुणहाणिपमाणं, अज्झवसाणम्मि होदि गुणहाणी ।
णाणागुणहाणिसला, असंखभागो ठिदिस्स हवे ॥951॥

- अर्थ—पहले बंध-कथन के अवसर पर जैसा कर्मस्थिति की रचना में गुणहानि का प्रमाण कहा है वैसा ही यहाँ कषाय-अध्यवसायस्थानों में भी गुणहानि का प्रमाण जानना और
- जो नाना गुणहानियों का प्रमाण उस जगह कहा है उसके असंख्यातवें भाग प्रमाण यहाँ कषाय-अध्यवसायस्थानों में नाना गुणहानि का प्रमाण होता है ॥951॥

नाना गुणहानि

$$= \frac{\text{स्थिति संबंधी नाना गुणहानि}}{\text{असंख्यात}}$$

$$= \frac{\text{छे–व छे}}{\text{असंख्यात}}$$

गुणहानि आयाम

$$= \frac{\text{स्थिति}}{\text{नाना गुणहानि}}$$

$$= \frac{\text{संख्यात पल्य}}{\frac{\text{छे– व छे}}{\text{असंख्यात}}}$$

यह अध्यवसाय संबंधी गुणहानि आयाम, स्थिति संबंधी गुणहानि आयाम से असंख्यात गुणा बड़ा है । सामान्यरूप से यह $\frac{\text{पल्य}}{\text{असंख्यात}}$ है ।

www.jainkosh.org

अध्यवसायस्थानों की गुणहानि

जितना गुणहानि आयाम का प्रमाण है, उतने जघन्य स्थिति से लेकर स्थिति के भेदों तक प्रथम गुणहानि होती है । जघन्य स्थिति बंध के कारणभूत अध्यवसाय स्थानों को प्रथम निषेक कहते हैं।

इसमें चय जोड़ने पर अगले स्थिति बंध के कारणभूत अध्यवसाय स्थानों का प्रमाण आता है । इसे द्वितीय निषेक कहते हैं ।

ऐसे 1-1 चय जोड़ते हुए गुणहानि का अंतिम निषेक = (एक कम गुणहानि प्रमाण चय + प्रथम निषेक) अर्थात् [{गुणहानि – 1) × चय} + प्रथम निषेक] होता है ।

इसके आगे द्वितीय गुणहानि प्रारंभ होती हैं । यहाँ चय का प्रमाण दुगुणा हो जाता है ।

प्रथम गुणहानि के अंतिम निषेक में द्वितीय गुणहानि का एक चय जोड़ने पर द्वितीय गुणहानि का प्रथम निषेक प्राप्त होता है ।

अध्यवसायस्थानों की गुणहानि

अंक संदृष्टि में 16 प्रथम गुणहानि का अंतिम निषेक है ।

इसमें द्वितीय गुणहानि का चय = 2 जोड़ने पर 16 + 2 = 18 होता है । यह द्वितीय गुणहानि का प्रथम निषेक है ।

इसी चय को प्रथम निषेक में जोड़ने पर द्वितीय गुणहानि का द्वितीय निषेक (20) आता है ।

इसी प्रकार क्रमशः एक-एक चय बढ़ते हुए गुणहानि के अंतिम निषेक तक अध्यवसाय स्थानों की संख्या बढ़ती जाती है ।

ऐसे अंतिम गुणहानि तक जानना चाहिये ।

अध्यवसायस्थानों की गुणहानि की अंकसंदृष्टि

अंक संदृष्टि से माना-

स्थिति भेद = 48

गुणहानि आयाम = 8

नाना गुणहानि = 6

कुल अध्यवसाय-स्थान = 6300

जघन्य स्थितिबंध = 10,000 समय

इनकी रचना इस प्रकार होगी -

स्थिति	अध्य. स्थान	स्थिति	अध्य. स्थान	स्थिति	अध्य. स्थान		स्थिति	अध्य. स्थान
10007	16	10015	32	10023	64	.....	10047	512
10006	15	10014	30	10022	60	.....	10046	480
10005	14	10013	28	10021	56	.....	10045	448
10004	13	10012	26	10020	52	.....	10044	416
10003	12	10011	24	10019	48	.....	10043	384
10002	11	10010	22	10018	44	.....	10042	352
10001	10	10009	20	10017	40	.....	10041	320
10000	9	10008	18	10016	36	.....	10040	288
1st गुणहानि		2nd गुणहानि		3rd गुणहानि		.....	6th गुणहानि	

लोगाणमसंखपमा, जहण्णउड्ढिम्मि तम्हि छट्ठाणा । ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणाणं होंति सत्तण्हं ॥952॥

- अर्थ—आयु के बिना शेष सात प्रकृतियों के स्थिति-बंधाध्यवसाय-स्थानों में जघन्य वृद्धि (चय) का प्रमाण असंख्यात लोक है ।
- इस जघन्य वृद्धि में असंख्यात लोकप्रमाण षट्-स्थानपतित वृद्धियाँ होती हैं ॥952॥

चय

$$= \frac{\text{गुणहानि का प्रथम निषेक}}{\text{गुणहानि}+1}$$

$$= \frac{\text{असंख्यात लोक}}{\frac{\text{पल्य}}{\text{असंख्यात}}} = \text{असंख्यात लोक}$$

यहाँ चय का प्रमाण भी असंख्यात लोकप्रमाण है जो प्रथम निषेक का असंख्यातवा भाग है ।

यह जो असंख्यात लोक प्रमाण चय है, इसमें षट्स्थान पतित वृद्धियां असंख्यात लोक बार हो जाती है । क्योंकि

एक षट्स्थान में $\left(\frac{\text{सूच्यंगुल}}{\text{असंख्यात}}+1\right)^5$ प्रमाण स्थान होते हैं ।

तो असंख्यात लोक प्रमाण भावों में कितने षट्स्थान होंगे?

त्रैराशिक करने पर असंख्यात लोक आता है ।

चूंकि सातों ही कर्मों के अध्यवसायस्थानों का प्रथम निषेक असंख्यात लोक है । इसलिए सबका चय असंख्यात लोक प्राप्त होता है ।

इतने-इतने अधिक परिणाम द्वितीयादि स्थिति-भेदों में पाये जाते हैं ।

www

अनुकृष्टि रचना

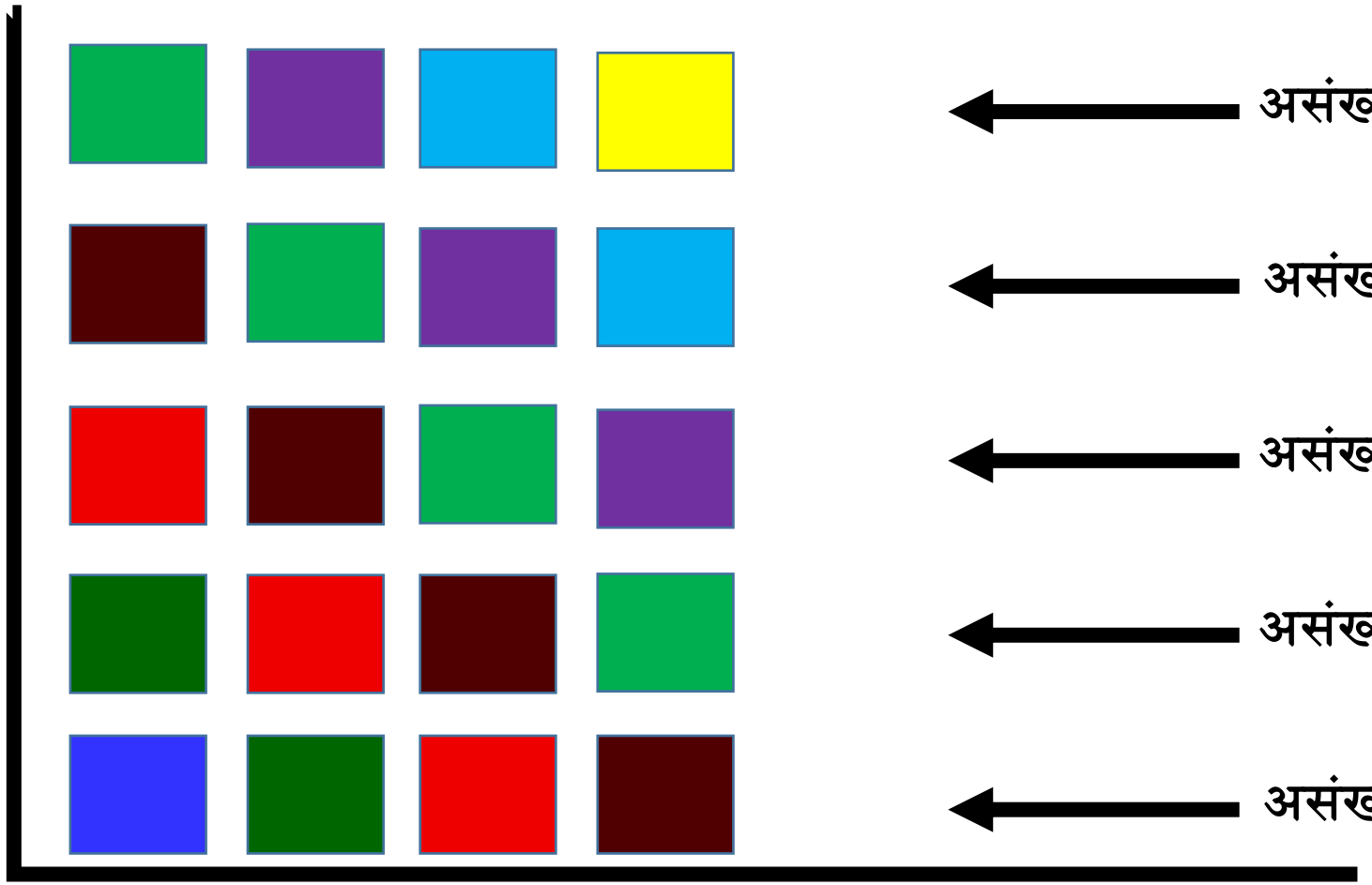

पंचम समय ← असंख्यात लोक प्रमाण परिणाम

चतुर्थ समय ← असंख्यात लोक प्रमाण परिणाम

तृतीय समय ← असंख्यात लोक प्रमाण परिणाम

द्वितीय समय ← असंख्यात लोक प्रमाण परिणाम

प्रथम समय ← असंख्यात लोक प्रमाण परिणाम

काल - अंतर्मुहूर्त

आउस्स जहण्णट्ठिदि-बंधणजोग्गा असंखलोगमिदा । आवलिअसंखभागेणुवरुवरिं होंति गुणिदकमा ॥953॥

- अर्थ—आयुकर्म के जघन्य स्थितिबंध के योग्य अध्यवसायस्थान असंख्यात लोकप्रमाण हैं ।
- उससे आगे-आगे उत्कृष्ट स्थितिपर्यन्त क्रम से आवली के असंख्यातवें भाग से गुणे हुए स्थान का प्रमाण होता है ॥953॥

आयु कर्म के अध्यवसायस्थान

आयु कर्म के स्थिति अध्यवसायस्थान असंख्यात लोकप्रमाण हैं ।

जघन्य स्थिति से उत्कृष्ट स्थिति के अध्यवसायस्थान क्रमशः अधिक होते हैं । परन्तु यहाँ पर एक स्थिति से दूसरी स्थिति के अध्यवसायस्थान चयमात्र अधिक नहीं होते; बल्कि असंख्यात गुणा बढ़ते हैं ।

अर्थात् जघन्य स्थिति के कारणभूत अध्यवसायस्थान से अगले स्थान के अध्यवसायस्थान असंख्यात गुणा पाये जाते हैं ।

ऐसे द्वितीय स्थान के अध्यवसायस्थानों से तीसरे स्थान के अध्यवसायस्थान असंख्यात गुणे हैं ।

ऐसे उत्कृष्ट स्थान तक असंख्यात गुणा करना चाहिये ।

आयु कर्म के अध्यवसायस्थानों की अंक-संदृष्टि

आयु कर्म के स्थिति भेद = 16

जघन्य स्थिति के अध्यवसायस्थान = 22

आवली का असंख्यात भाग = 4

www.JainKos

स्थिति भेद	स्थितिबंध अध्यवसायस्थान
16	22×4^{15}
15	22×4^{14}
14	22×4^{13}
13	22×4^{12}
12	22×4^{11}
11	22×4^{10}
10	22×4^{9}
9	22×4^{8}
8	22×4^{7}
7	22×4^{6}
6	22×4^{5}
5	22×4^{4}
4	$22\times4\times4\times4 = 22\times4^{3}$
3	$22\times4\times4$
2	22×4
1	22

स्थितिबंध-अध्यवसायस्थानों में अनुकृष्टि रचना

सब कर्मों के स्थितिबंध अध्यवसायस्थानों में अनुकृष्टि रचना बनती है । क्योंकि नीचे के स्थितिबंध के कारणभूत अध्यवसायस्थानों से ऊपर के स्थितिबंध के कारणभूत अध्यवसायस्थानों की समानता पाई जाती है ।

तात्पर्य यह है कि जिस भाव से जघन्य स्थिति बंध होता है, उसी भाव से जघन्य स्थिति से अधिक भी स्थिति बंध पाया जाता है ।

जैसे त्रिकरण चूलिका अधिकार में अध:प्रवृत्तकरण में अनुकृष्टि रचना एवं ऊपर-नीचे के परिणामों में समानता कही है, उसी प्रकार यहाँ स्थितिबंध अध्यवसायस्थानों में भी ऊपर-नीचे के परिणामों में समानता पाई जाती है ।

आयु कर्म के उपर्युक्त अध्यवसाय स्थानों में अनुकृष्टि रचना बताते हैं-

अनुकृष्टि चय = 1, अनुकृष्टि गच्छ = 4

चयधन = $\frac{\text{गच्छ}-1}{2} \times \text{चय} \times \text{गच्छ} = \frac{4-1}{2} \times 1 \times 4 = 6$

जघन्य स्थिति के स्थितिबंध अध्यवसायस्थान = 22

सर्वद्रव्य – चयधन = आदिधन

22 – 6 = 16

$\frac{\text{आदिधन}}{\text{गच्छ}}$ = आदि

$\frac{16}{4} = 4$

जघन्य स्थिति के अध्यवसायस्थान की रचना

22	4	5	6	7
कुल अ.स्थान	प्रथम खंड	द्वितीय खंड	तृतीय खंड	चतुर्थ खंड

द्वितीय आदि स्थितियों के अध्यवसायस्थान की रचना

षष्टम	22×4^5	$(22\times12)+5$	$(22\times48)+6$	$(22\times192)+7$	$(22\times768)+(22\times3)+4$
पंचम	22×4^4	$(22\times3)+4$	$(22\times12)+5$	$(22\times48)+6$	$(22\times192)+7$
चतुर्थ	22×4^3	7	$(22\times3)+4$	$(22\times12)+5$	$(22\times48)+6$
तृतीय	22×4^2	6	7	$(22\times3)+4$	$(22\times4\times3)+5$
द्वितीय	22×4	5	6	7	$(22\times3)+4$

इन सारी अनुकृष्टि के खंडों का तात्पर्य अध:प्रवृत्तकरण के खंडोवत् जानना । अंतर इतना है कि यहाँ ये आयुकर्म के स्थितिबंध के कारणभूत परिणाम हैं और वहाँ वे विशुद्धि के परिणाम हैं ।

इसी प्रकार सर्व कर्मों के स्थितिबंध अध्यवसायस्थानों की अनुकृष्टि रचना बनाना चाहिये ।

पल्लासंखेज्जदिमा, अणुकट्टी तत्तियाणि खंडाणि ।
अहियकमाणि तिरिच्छे, चरिमं खंडं च अहियं तु ॥954॥

- अर्थ—स्थिति-बंधाध्यवसायस्थानों की अनुकृष्टि रचना में पल्य के असंख्यातवें भाग अनुकृष्टि के पदों (गच्छ) का प्रमाण है और उतने ही अनुकृष्टि के खंड होते हैं ।
- वे खंड तिर्यक् (बराबर) रचना किये गये क्रम से अनुकृष्टि के चय से अधिक-अधिक हैं ।
- परन्तु जघन्य-खण्ड से अंत का खंड कुछ विशेष से ही अधिक है, दुगुना तिगुना नहीं होता ॥954॥

www.JainKosh.org

स्थिति-अध्यवसायस्थानों में अनुकृष्टि की रचना

अनुकृष्टि गच्छ का प्रमाण $= \frac{\text{गुणहानि आयाम}}{\text{संख्यात}}$

$= \frac{\text{पल्य}}{\text{असंख्यात} \times \text{संख्यात}} = \frac{\text{पल्य}}{\text{असंख्यात}}$

$\frac{\text{पल्य}}{\text{असंख्यात}}$ प्रमाण अनुकृष्टि के खण्ड होते हैं ।

इतने ही स्थिति के भेदों तक ऊपर तक सदृशता पाई जाती है ।

क्योंकि जितने अनुकृष्टि के खण्ड होते हैं, उतने भेदों तक नीचे के परिणाम ऊपर तक पाये जाते हैं।

स्थिति-अध्यवसायस्थानों में अनुकृष्टि की रचना

अनुकृष्टि के प्रथम खण्ड से द्वितीय खंड एक चय अधिक होता है । द्वितीय से तृतीय खंड एक चय से अधिक होता है । ऐसे एक स्थिति-भेद के अध्यवसायस्थानों के अनुकृष्टि खण्ड एक-एक चय से अधिक-अधिक पाये जाते हैं ।

ऐसे चय बढ़ने पर भी अंतिम खंड तक अधिक-अधिकरूप ही राशि उपलब्ध होती है, गुणाकार रूप नहीं । अनुकृष्टि के प्रथम खंड से उसी भेद का अंतिम अनुकृष्टि खंड भी अधिक रूप ही होता है, गुणाकार रूप नहीं ।

जैसे 162 परिणामसमूह में

39	40	41	42

4 खण्ड हैं ।

यहाँ 39 से 40, 40 से 41, 41 से 42 अधिक रूप ही हैं, संख्यात या असंख्यात गुणे नहीं हैं । 39 से 42 रूप खण्ड भी अधिक ही है, संख्यात या असंख्यात गुणा नहीं है ।

लोगाणमसंखमिदा, अहियपमाणा हवंति पत्तेयं ।
समुदायेणवि तच्चिय, ण हि अणुकिट्टिम्मि गुणहाणी ॥955॥

- अर्थ—प्रत्येक गुणहानि के प्रति अनुकृष्टि के चय का प्रमाण दुगुना-दुगुना है, फिर भी सामान्य से असंख्यात लोकमात्र ही है। सब चयसमूह को मिलाने से भी असंख्यात लोकप्रमाण ही होता है ।
- अनुकृष्टि के गच्छों में गुणहानि की रचना नहीं है ॥955॥

www.JainKosh.org

अनुकृष्टि चय

$$\text{अनुकृष्टि चय} = \frac{\text{ऊर्ध्व चय}}{\text{अनुकृष्टि गच्छ}} = \frac{\text{असंख्यात लोक}}{\frac{\text{पल्य}}{\text{असंख्यात}}} = \text{असंख्यात लोक}$$

अनुकृष्टि का चय भी असंख्यात लोक प्रमाण होता है । यह ऊर्ध्व चय से असंख्यात गुणाहीन है । इस चय में भी ऊर्ध्वचय की तरह असंख्यात षट्स्थान बन जाते हैं ।

यह प्रथम गुणहानि का चय है । द्वितीय गुणहानि में चय दुगुना हो जाता है । क्योंकि द्रव्य का प्रमाण दुगुना हो जाता है । प्रत्येक गुणहानि में अनुकृष्टि खण्डों का प्रमाण समान ही है, परन्तु चय दुगुना होता है ।

अनुकृष्टि के खण्डों में गुणहानि की रचना नहीं होती है । क्योंकि यहाँ एक भी गुणहानि आयाम पूर्ण नहीं होता है । एक खण्ड से दूसरा खण्ड अधिक रूप होते हुए भी अंतिम खण्ड भी अधिक रूप ही होता है । दुगुना आदि नहीं होता है ।

अनुकृष्टि के जघन्य खण्ड का प्रमाण

$\frac{\text{गच्छ}-1}{2} \times \text{चय} \times \text{गच्छ} = \text{प्रचयधन}$

$\frac{\frac{\text{पल्य}}{\text{असंख्यात}}-1}{2} \times \text{असंख्यात लोक} \times \frac{\text{पल्य}}{\text{असंख्यात}} = \text{चयधन}$

जघन्य भेद के अध्यवसायस्थान – प्रचयधन = आदिधन

$\equiv \partial\partial - \equiv \partial = \text{आदिधन}$

$\equiv \partial = \text{आदिधन}$

$\frac{\text{आदिधन}}{\text{अनुकृष्टि गच्छ}} = \text{आदि}$

$\frac{\text{असंख्यात लोक}}{\frac{\text{पल्य}}{\text{असंख्यात}}} = \text{आदि}$

$\equiv \partial = \text{आदि}$

अर्थात् प्रथम खण्ड के परिणाम भी असंख्यात लोक प्रमाण हैं ।

इनमें 1-1 चय बढ़ते हुए प्रत्येक खण्ड के परिणाम असंख्यात लोक हैं ।

द्वितीय निषेक के प्रथमादि खण्डों के परिणाम भी असंख्यात लोक प्रमाण होते हैं ।

ऐसे अंतिम गुणहानि के अंतिम निषेक तक असंख्यात लोक – असंख्यात लोक प्रमाण परिणाम प्रत्येक खण्ड में जानने चाहिये।

पढमं पढमं खंडं, अण्णोण्णं पेक्खिऊण विसरित्थं । हेट्ठिल्लुक्कस्सादोऽणंतगुणादुवरिमजहण्णं ॥956॥

- अर्थ—इस प्रकार अनुकृष्टि रचना में प्रथमादि गुणहानियों में प्रथम-प्रथम खंड भी परस्पर विसदृश (असमान) हैं ।
- क्योंकि नीचे के प्रथम खंड के उत्कृष्ट स्थान से ऊपर के प्रथम खंड का जघन्य स्थान; शक्ति की अपेक्षा से अनंतगुणा है ॥956॥

www.JainKosh.org

प्रत्येक निषेक के प्रथम-प्रथम खंड की तुलना

प्रत्येक निषेक का अनुकृष्टि का पहला-पहला खण्ड परस्पर में असमान है ।

परिणामों की संख्या अपेक्षा

- प्रत्येक प्रथम खण्ड के परिणामों की संख्या विसदृश है । एक निषेक के प्रथम खण्ड से अगले निषेक का प्रथम खण्ड एक चय अधिक है । इसलिए परिणामों की संख्या में अंतर है ही ।

परिणामों की शक्ति

- एक निषेक के प्रथम खण्ड के अंतिम परिणाम से अगले निषेक के प्रथम खण्ड का जघन्य परिणाम भी अनंत गुणा शक्ति लिये होता है । इसलिए दोनों प्रथम खंड परस्पर में विसदृश हैं ।

www.JainKosh.org

जैसे उदाहरण में-

निषेक	प्रथम खण्ड – परिणाम संख्या	परिणाम रचना
6	44	
5	43	
4	42	
3	41	
2	40	
1	39	

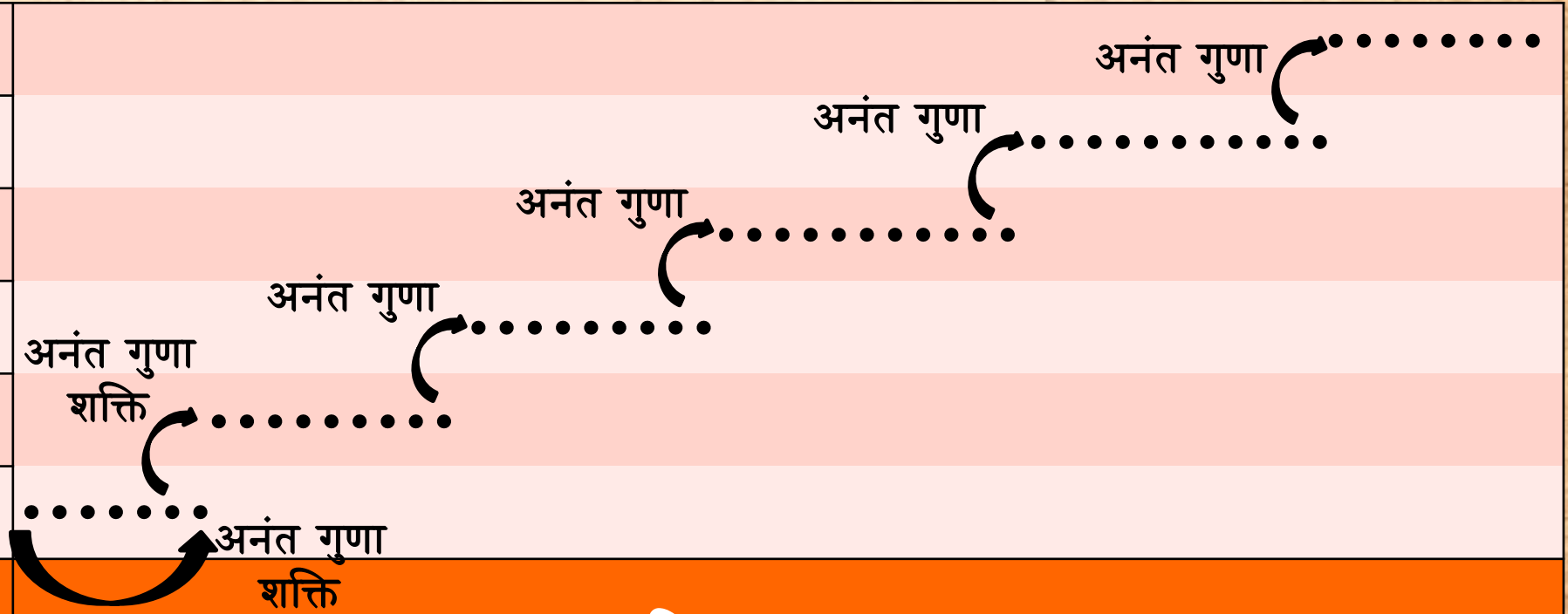

www.JainKosh.org

बिदियं बिदियं खंडं, अण्णोण्णं पेक्खिऊण विसरित्थं । हेट्ठिल्लुक्कस्सादोऽणंतगुणादुवरिमजहण्णं ॥957॥

- अर्थ—गुणहानियों में प्रथमादि निषेकों का दूसरा-दूसरा खंड परस्पर देखने से असमान है;
- क्योंकि नीचले दूसरे खंड के उत्कृष्ट स्थान से ऊपर के दूसरे खंड का जघन्य स्थान शक्ति की अपेक्षा अनंतगुणा है ।
- ऐसे ही तीसरे-तीसरे इत्यादि खंडों की असमानता जान लेना । इस प्रकार एक कम अनुकृष्टि प्रमाण खंडों की असमानता के पश्चात् अंतिम खंड संबंधी कथन कहते हैं ॥957॥

www.jainkosh.org

प्रत्येक निषेक के द्वितीय-द्वितीय खंड की तुलना

इसी प्रकार प्रत्येक निषेक का द्वितीय खण्ड अगले निषेक के द्वितीय खण्ड से विसदृश है ।
यहाँ भी विसदृशता परिणाम संख्या और परिणाम शक्ति अपेक्षा जानना चाहिये ।

निषेक	द्वितीय खण्ड – परिणाम संख्या	परिणाम रचना
5	44	
4	43	
3	42	
2	41	
1	40	

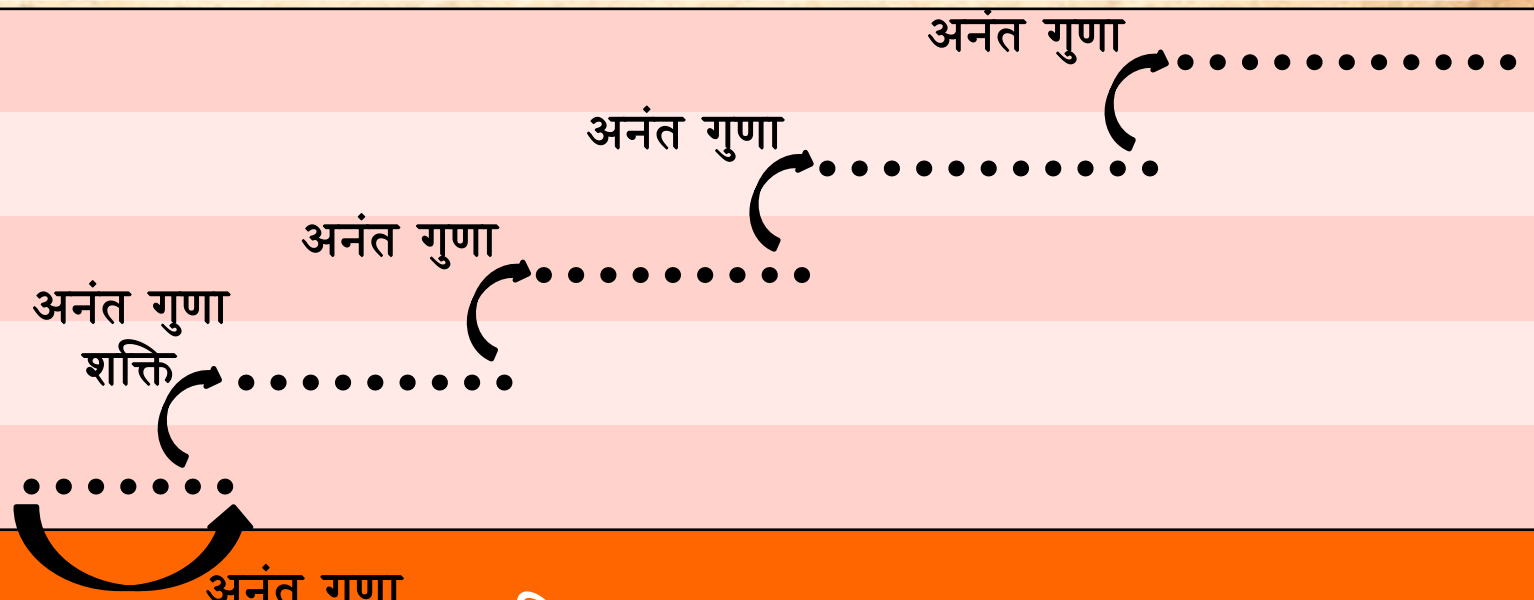

इसी प्रकार प्रत्येक निषेक का तीसरा खण्ड अगले निषेक के तीसरे खण्ड से विसदृश है ।

ऐसे प्रत्येक खण्ड के लिए जानना चाहिये ।

चरिमं चरिमं खंडं, अण्णोण्णं पेक्खिऊण विसरित्थं । हेट्ठिल्लुक्कस्सादोऽणंतगुणादुवरिमजहण्णं ॥958॥

- अर्थ—गुणहानि के प्रथमादि निषेकों का अंत-अंत का खंड अंत के निषेकों के अंत के खंडपर्यंत निरंतर एक-एक चय अधिक होने से परस्पर में असमान है । और
- शक्ति की अपेक्षा से नीचले अंतिम खंड के उत्कृष्ट स्थान से ऊपर के अंतिम खंड का जघन्य स्थान अनंतगुणा है ॥958॥

www.JainKosh.org

प्रत्येक निषेक के अंतिम-अंतिम खंड की तुलना

ऐसे करते हुए प्रत्येक निषेक के अंतिम खंड से अगले निषेक का अंतिम खण्ड असमान है ।

एक निषेक के अंतिम खण्ड के उत्कृष्ट परिणाम से अगले निषेक के अंतिम खण्ड का जघन्य परिणाम भी अनंत गुणा शक्ति लिये हुए है ।

www.JainKosh.org

हेट्ठिमखंडुक्कस्सं, उव्वंकं होदि उवरिमजहण्णं । अट्ठंकं होदि तदो-णंतगुणं उवरिमजहण्णं ॥959॥

- अर्थ—नीचे के खंड का उत्कृष्ट परिणाम उर्वंकरूप (अनंतभाग वृद्धि) है ।
- उसके ऊपर के खंड का जघन्य परिणाम अष्टांकरूप (अनंतगुण वृद्धि) है ।
- इसलिए नीचले खंड के उत्कृष्ट से ऊपर के खंड का जघन्यस्थान अनंतगुणा पाया जाता है ॥959॥

उत्कृष्ट से जघन्य में अनंत गुणे होने का कारण?

प्रत्येक अनुकृष्टि खंड का अंतिम परिणाम उर्वंकरूप है, याने अनंत भागवृद्धि लिये हुए है ।

प्रत्येक खण्ड का प्रथम परिणाम अष्टांकरूप है । अर्थात् अनंत गुणवृद्धि लिये हुए है ।

याने प्रत्येक खण्ड का प्रारंभ नवीन षट्स्थान से होता है क्योंकि प्रत्येक षट्स्थान का आदि अष्टांक से होता है ।

प्रत्येक खण्ड की समाप्ति षट्स्थान की पूर्णता पर होती है क्योंकि प्रत्येक षट्स्थान का अंतिम स्थान ऊर्वंक होता है ।

इस प्रकार एक निषेक के प्रथमादि खंड के अंतिम ऊर्वंकरूप परिणाम से अगले निषेक के प्रथमादि खंड के प्रथम परिणाम अष्टांकरूप होते हैं । अतः एक खंड के उत्कृष्ट से अगले खण्ड का जघन्य अनंत गुणा होता है ।

अवरुक्कस्सठिदीणं, जहण्णमुक्कस्सयं च णिव्वग्गं ।
सेसा सव्वे खंडा, सरिसा खलु होंति उड्ढेण ॥960॥

- अर्थ—जघन्य स्थिति का कारणरूप जो प्रथमनिषेक का जघन्य पहला खंड और उत्कृष्ट स्थिति का कारण जो अंत के निषेक का उत्कृष्ट अंत का खंड – ये दोनों तो निर्वर्ग हैं अर्थात् किसी खंड से सर्वथा समान नहीं हैं ।
- शेष सब खंड ऊर्ध्व-रचना के द्वारा अन्य खंडों के समान हैं ॥960॥

www.jainkosh

निर्वर्ग खण्ड

स्थितिबंध अध्यवसायस्थानों की इस अनुकृष्टि रचना में जघन्य स्थिति को कारणभूत प्रथम निषेक का पहला खण्ड और उत्कृष्ट स्थिति को कारणभूत अंतिम निषेक सर्व खण्डों से असमान है । इसे ही निर्वर्ग खण्ड कहते हैं ।

शेष सारे खण्ड ऊर्ध्वरचना में एक-दूसरे के समान हैं ।

यथा इस दृष्टांतरूप संदृष्टि में देखिए –

www.JainKosh.org

16	222	54	55	56	57
15	218	53	54	55	56
14	214	52	53	54	55
13	210	51	52	53	54
12	206	50	51	52	53
11	202	49	50	51	52
10	198	48	49	50	51
9	194	47	48	49	50
8	190	46	47	48	49
7	186	45	46	47	48
6	182	44	45	46	47
5	178	43	44	45	46
4	174	42	43	44	45
3	170	41	42	43	44
2	166	40	41	42	43
1	162	39	40	41	42
निषेक	परिणामों की संख्या	अनुकृष्टि के खंड			

स्थितिबंध अध्यवसाय-स्थानों की अनुकृष्टि रचना

इसमें 39 परिणाम वाला खंड और 57 परिणाम वाला खंड सर्वथा असमान है ।

शेष 40, 41 से 56 तक के परिणाम खंड ऊर्ध्वरचना में समानता लिये हुए हैं ।

अट्ठण्हं पि य एवं, आउजहण्णट्ठिदिस्स वरखंडं ।
जाव य ताव य खंडा, अणुकट्टिपदे विसेसहिया ॥961॥
तत्तो उवरिमखंडा, सगसगउक्कस्सगोत्ति सेसाणं ।
सव्वे ठिदीण खंडाऽसंखेज्जगुणक्कमा तिरिये ॥962॥

- अर्थ—आठों ही कर्मों की उक्त रचनाविशेष समान है, परंतु विशेषता यह है कि आयुकर्म के अनुकृष्टि-गच्छ में जो खंड हैं वे जघन्य स्थिति के अंतिम खंडपर्यंत तो विशेषता से अधिक हैं।
- उसके बाद उस उत्कृष्ट खंड से ऊपर के स्थितिखंड हैं उनसे लेकर अपने-अपने उत्कृष्ट खंडपर्यंत तथा अवशेष स्थितियों के अपने-अपने जघन्य खंड से अपने-अपने उत्कृष्ट खंडपर्यंत सब तिर्यग् रचना करके क्रम से असंख्यातगुणे हैं ॥961-962॥

www.JainKosh.org

शेष कर्मों के स्थितिबंध-अध्यवसायस्थान

जिस प्रकार से मोहनीय के स्थितिबंध अध्यवसायस्थानों को कहा है, वैसे ही आठों कर्मों के अध्यवसायस्थानों की रचना जानना चाहिये ।

इतना विशेष है कि अपनी-अपनी स्थिति, अध्यवसायस्थानों का प्रमाण, नाना गुणहानि आदि प्रत्येक कर्म की विशेष है ।

आयु कर्म की अनुकृष्टि रचना में कुछ विशेष है। उसे आगे कहते हैं।

www.JainKosh.org

आयु कर्म के अध्यवसायस्थानों की अनुकृष्टि रचना

1) जघन्य स्थिति के कारणभूत अध्यवसायस्थानों में अनुकृष्टि खंड एक-एक चय से बढ़ते हैं । यथा

22 (प्रथम)	4	5	6	7
निषेक	प्रथम	द्वितीय	तृतीय	चतुर्थ

2) इससे आगे के निषेकों में जब तक जघन्य स्थिति का उत्कृष्ट खंड चलता है, वहाँ तक अनुकृष्टि खंड एक-एक चय से अधिक होते हैं । उसके आगे के खंड के परिणाम असंख्यात गुणा पाये जाते हैं । यथा

तृतीय निषेक	22×4×4	6	7	(22×3) + 4	(22×4×3) + 5
द्वितीय निषेक	22×4	5	6	7	(22×3) + 4

यहाँ द्वितीय निषेक में तृतीय खण्ड से चतुर्थ खण्ड असंख्यात गुणा है ।
तृतीय निषेक में द्वितीय खंड से तृतीय खंड असंख्यात गुणा है ।
तृतीय से उसके आगे के सारे खंड भी असंख्यात गुणे हैं ।

आयु कर्म के अध्यवसायस्थानों की अनुकृष्टि रचना

3) जहां जघन्य स्थिति का उत्कृष्ट खण्ड नहीं है, उन निषेकों में प्रथम खंड से द्वितीयादि खंड असंख्यात गुणे – असंख्यात गुणे ही पाये जाते हैं। यथा

षष्टम	22×4^5	$(22\times12)+5$	$(22\times48)+6$	$(22\times192)+7$	$(22\times768)+(22\times3)+4$
पंचम	22×4^4	$(22\times3)+4$	$(22\times12)+5$	$(22\times48)+6$	$(22\times192)+7$

यहाँ जघन्य स्थिति के कोई खंड नहीं हैं ।

अत: प्रत्येक खंड से अगला खंड असंख्यात गुणा अधिक है ।

www.JainKosh.org

रसबंधज्झवसाणट्ठाणाणि असंखलोगमेत्ताणि ।
अवरट्ठिदिस्स अवरट्ठिदिपरिणामम्हि थोवाणि ॥963॥

- अर्थ—अनुभाग-बंधाध्यवसायस्थान असंख्यातलोक को असंख्यातलोक से गुणे – ऐसे असंख्यात लोकप्रमाण हैं ।
- इसमें जघन्य स्थितिसंबंधी स्थिति-बंधावसायस्थानों में जघन्य स्थितिबंधयोग्य अध्यवसायों के प्रमाण से असंख्यात लोकगुणे अनुभाग-बंधाध्यवसायस्थान हैं, फिर भी अन्य स्थिति-बंधाध्यवसायसम्बन्धी परिणामों की अपेक्षा थोड़े हैं ॥963॥

www.jainkosh.org

घातिया कर्मों का अनुभाग

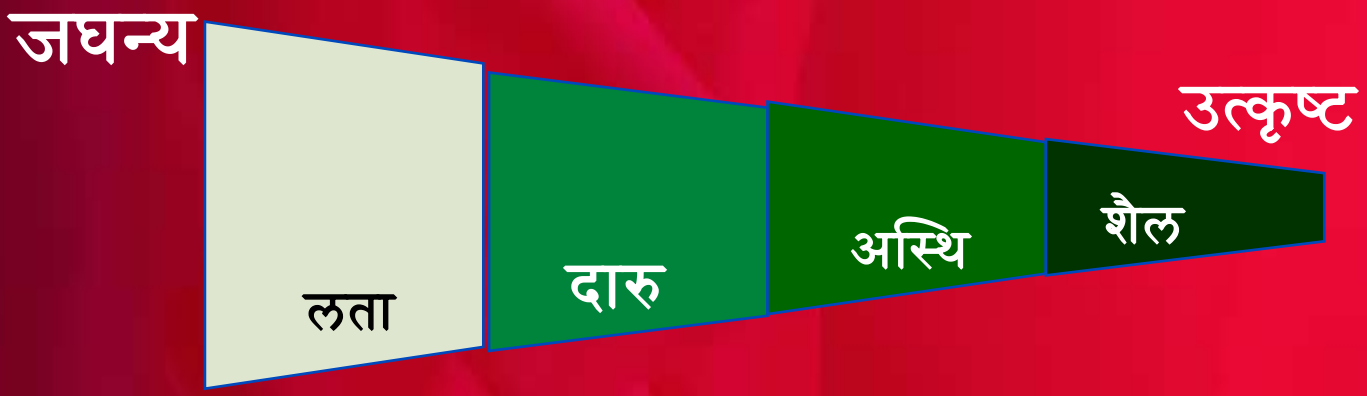

लता
- बेल

दारु
- काष्ठ, लकड़ी

अस्थि
- हड्डी

शैल
- पाषाण, पर्वत

जैसे इनमें उत्तरोत्तर अधिक-अधिक कठोरता पायी जाती है, उसी प्रकार घातिया कर्मों के अनुभाग अर्थात् फल देने की शक्ति इन-इन स्पर्धकों में अधिक-अधिक पायी जाती है।

घातिया कर्मों की अनुभाग-शक्ति दो प्रकार की है-

सर्वघाती

- आत्मा के गुण का पूर्णरूप से घात करने वाला ।

देशघाती

- आत्मा के गुण का एकदेशरूप से घात करने वाला ।

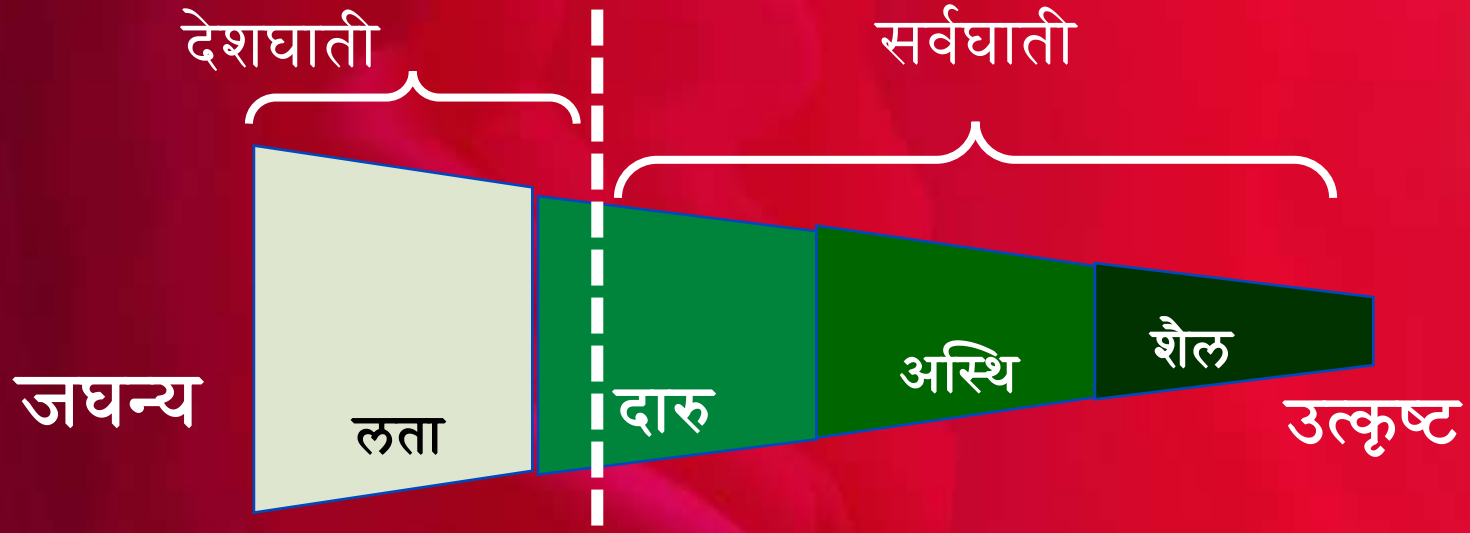

सारे लतारूप स्पर्धक देशघाती होते हैं ।

दारु के अनंतवे भाग स्पर्धक देशघाती होते हैं ।

दारु के अनंत बहुभाग स्पर्धक सर्वघाती होते हैं ।

अस्थि और शैल स्पर्धक सर्वघाती होते हैं ।

दर्शन मोहनीय का अनुभाग

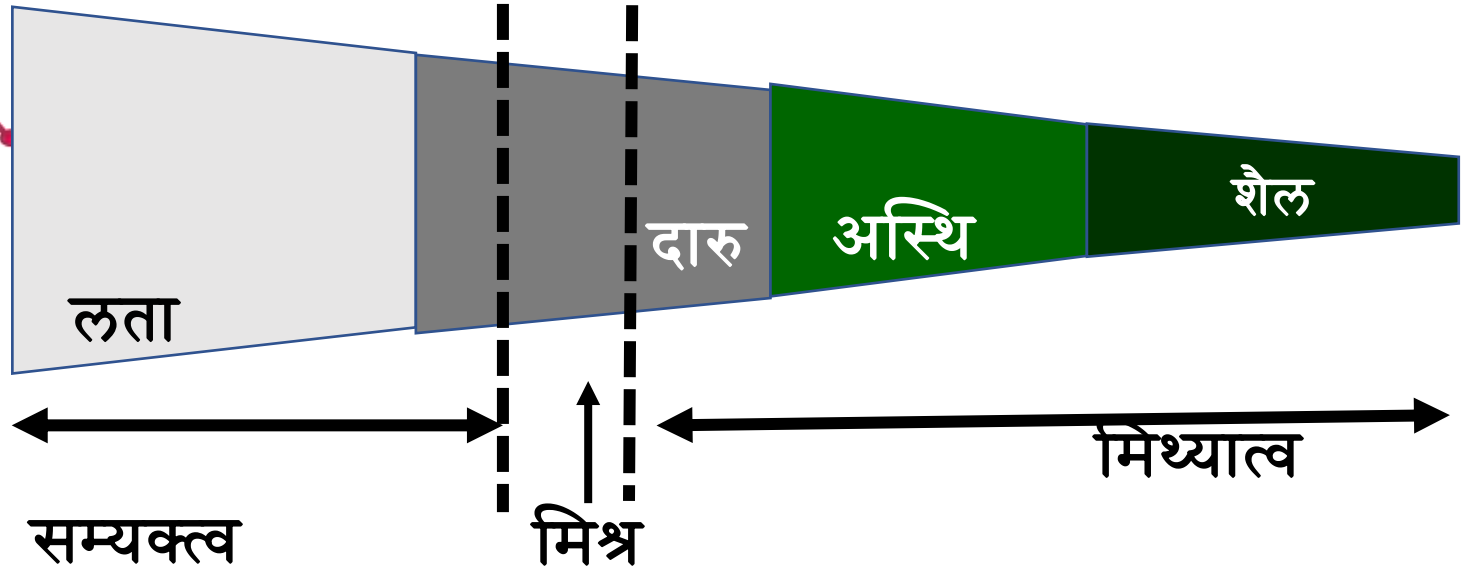

लता भाग दारु का अनंतवाँ भाग	सम्यक्त्व प्रकृति
दारु का अगला अनंतवाँ भाग	मिश्र प्रकृति
दारु का शेष अनंत अनुभाग तथा अस्थि, शैल	मिथ्यात्व प्रकृति

यह ही एक प्रकृति है, जिसमें भिन्न-भिन्न अनुभाग के कारण प्रकृतियों के नाम बदल जाते हैं ।

अन्य किसी प्रकृति में अनुभाग बदलने से प्रकृति का नाम नहीं बदला है ।

अघातिया कर्मों का अनुभाग

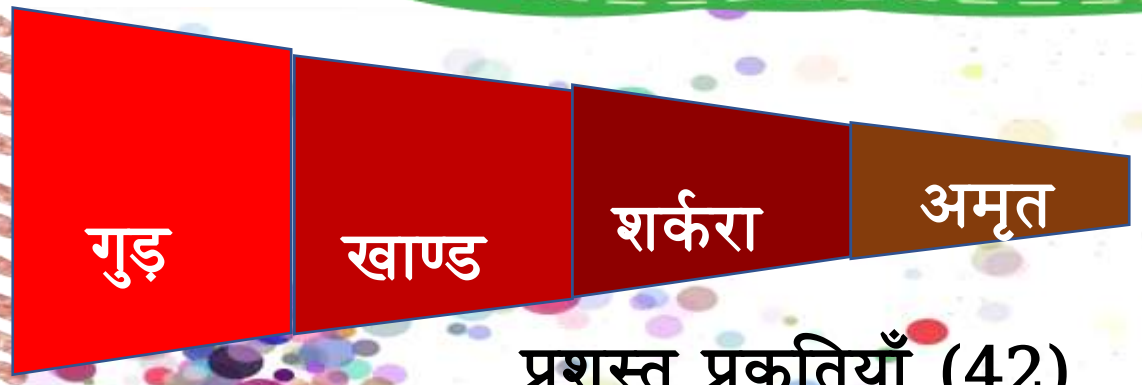

प्रशस्त प्रकृतियाँ (42)

जैसे गुड़, खाण्ड आदि अधिक-अधिक मिष्ट हैं, वैसे इन प्रशस्त प्रकृतियों के स्पर्धक उत्तरोत्तर मिष्टरूप हैं । अर्थात् अधिक-अधिक सांसारिक सुख के कारण हैं ।

अप्रशस्त प्रकृतियाँ (37)

जैसे निंब, कांजीर आदि उत्तरोत्तर अधिक-अधिक कड़वे हैं, अधिक-अधिक दु:खद हैं, वैसे इन अप्रशस्त प्रकृतियों के स्पर्धक उत्तरोत्तर अधिक-अधिक कड़वे हैं, अधिक-अधिक दु:ख के कारण हैं ।

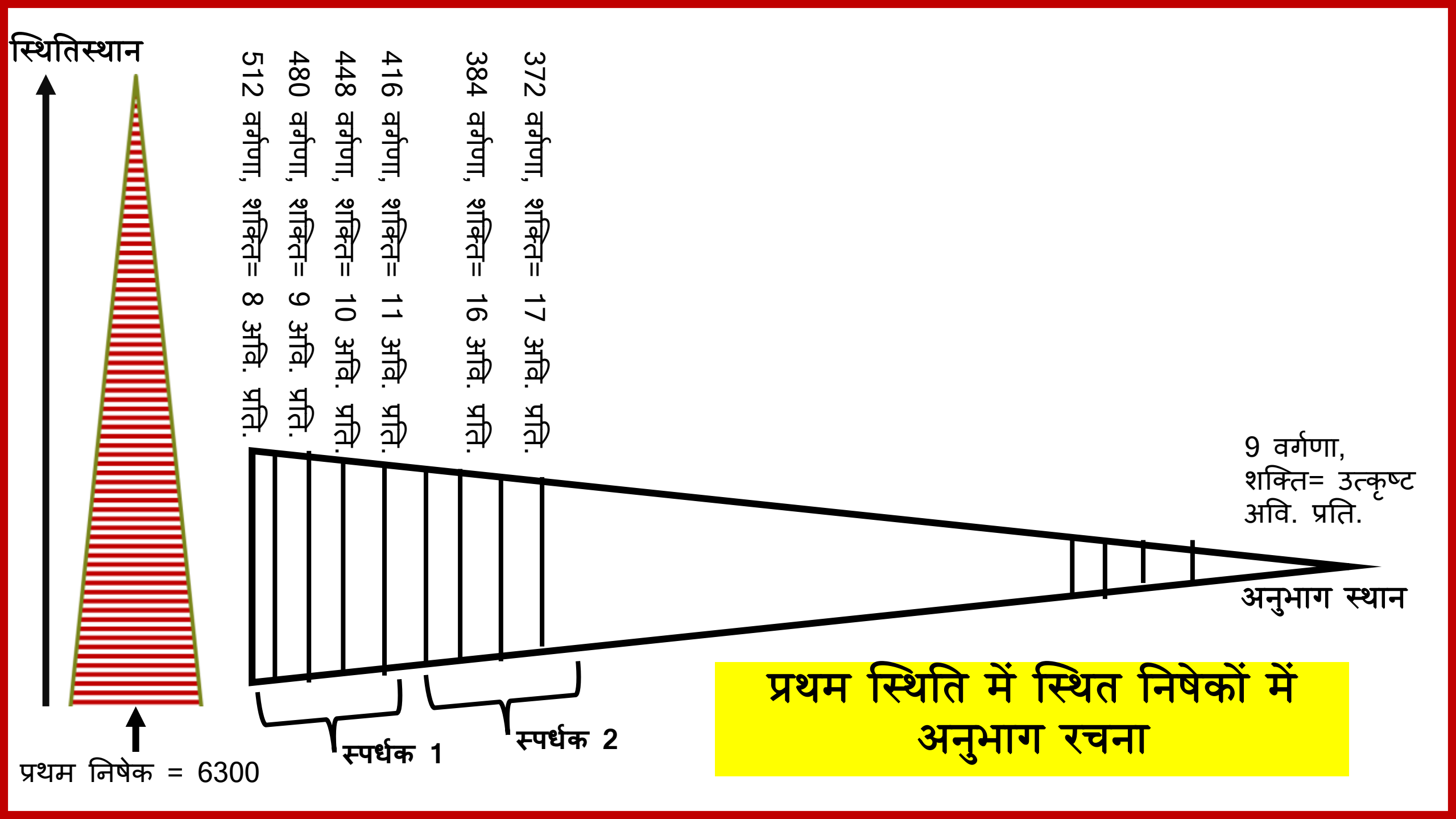

प्रथम स्थिति में स्थित निषेकों में अनुभाग रचना

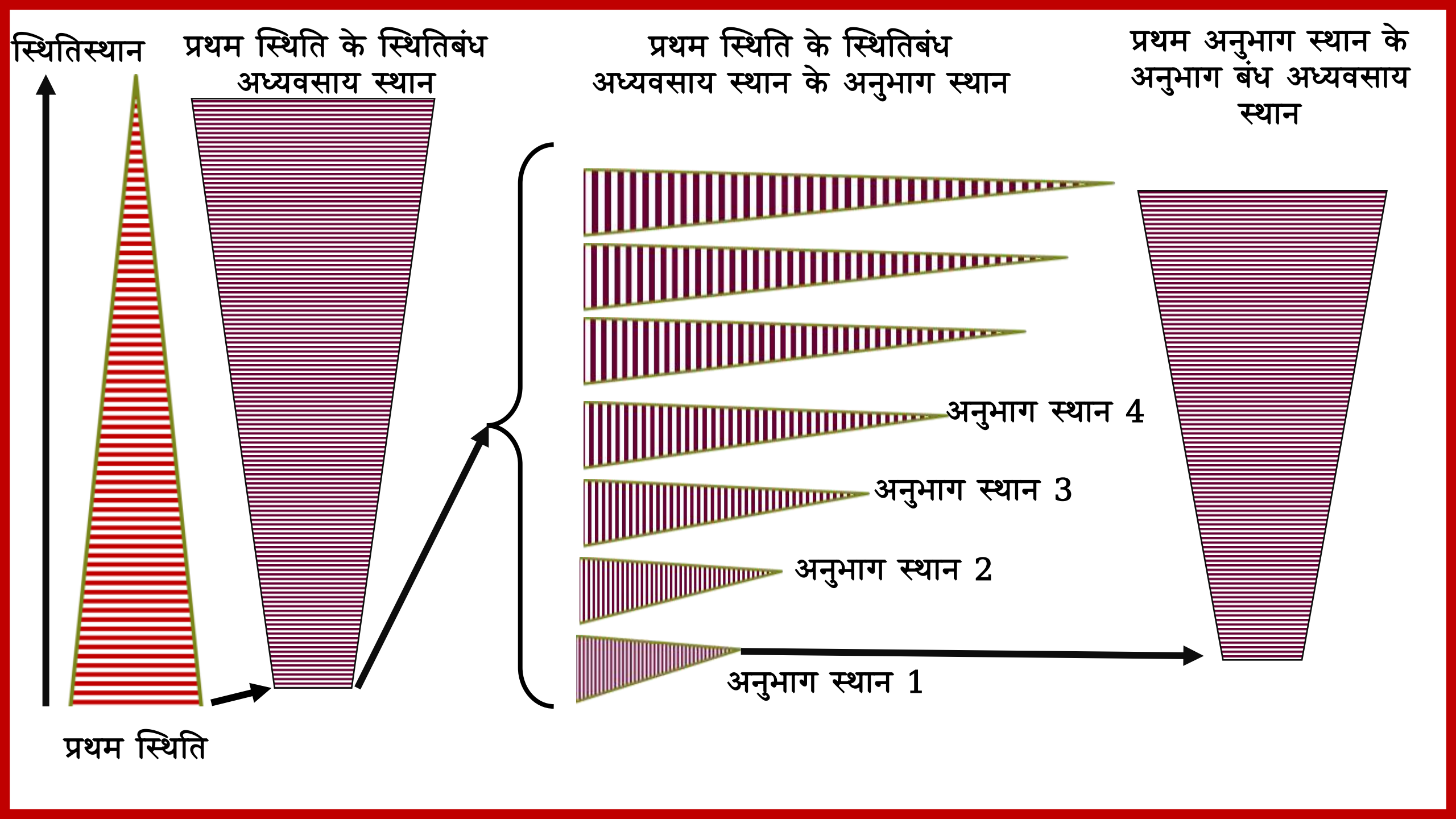
स्थितिस्थान
प्रथम स्थिति के स्थितिबंध अध्यवसाय स्थान
प्रथम स्थिति के स्थितिबंध अध्यवसाय स्थान के अनुभाग स्थान
प्रथम अनुभाग स्थान के अनुभाग बंध अध्यवसाय स्थान
अनुभाग स्थान 4
अनुभाग स्थान 3
अनुभाग स्थान 2
अनुभाग स्थान 1
प्रथम स्थिति

अनुभागबंध-अध्यवसाय स्थान

जिन भावों से कर्मों का अनुभाग बंध होता है, उन भावों को अनुभागबंध अध्यवसाय कहते हैं ।

इन सारे भावों को अनुभागबंध-अध्यवसाय-स्थान कहते हैं ।

प्रत्येक स्थितिबंध-अध्यवसाय से संबंधित अनेकों प्रकार के अनुभाग बंधयोग्य होते हैं ।

उन प्रत्येक अनुभागों को बांधने के लिए अनेकों अनुभागबंध-अध्यवसायस्थान होते हैं ।

www.JainKosh.org

जैसे माना कि स्थितिबंध के 5 प्रकार हैं — 10 समय से लेकर 14 समय तक की स्थिति ।

प्रत्येक स्थिति को बांधने के लिए 3 परिणाम पाये जाते हैं ।

इन प्रत्येक स्थिति-अध्यवसाय के प्रकारों में 4 प्रकार के अनुभागस्थान संभव हैं ।

इन प्रत्येक को बांधने के लिए 8 आदि परिणाम संभव हैं ।
तो इसकी रचना इस प्रकार दिखाई देगी –

स्थिति भेद	स्थिति अध्यवसायस्थान	अनुभागस्थान	अनुभाग-अध्यवसायस्थान	कुल अनु. स्थान
10 समय	S1	A1	8	38
		A2	9	
		A3	10	
		A4	11	
	S2	A1	12	54
		A2	13	
		A3	14	
		A4	15	
	S3	A1	16	76
		A2	18	
		A3	20	
		A4	22	

www.jainkosh.org

ऐसे ही शेष स्थानों के भी स्थिति, अनुभाग आदि को जानना ।

यह दृष्टांत है । वास्तविक संख्याओं को आगे बताया जा रहा है ।

स्थिति भेद	स्थिति अध्यवसाय स्थान	अनुभागस्थान	अनुभाग-अध्यवसाय स्थान	कुल अनु. स्थान
11 समय	S1	A1	24	108
		A2	26	
		A3	28	
		A4	30	
	S2	A1	32	152
		A2	36	
		A3	40	
		A4	44	
	S3	A1	48	216
		A2	52	
		A3	56	
		A4	60	

यहाँ जघन्य स्थिति (10) के प्रथम स्थिति-अध्यवसाय (S1) संबंधी जो जघन्य अनुभागस्थान (A1) के कारणभूत अनुभाग-अध्यवसायस्थान (8) हैं, वह प्रथम निषेक कहलाता है । इसी क्रम में आगे का अनुभाग-अध्यवसायस्थान (9) द्वितीय निषेक कहलाता है ।

इस प्रकार बढ़ते-बढ़ते प्रथम स्थिति-अध्यवसाय (S1) संबंधी सारे अनुभाग-अध्यवसायस्थान पूरे हो जाते हैं।

इसके पश्चात् द्वितीय स्थिति-अध्यवसाय संबंधी (S2) जो A1 से A4 के अनुभाग-अध्यवसाय स्थान हैं, वे एक-एक चय से बढ़ते हुए जाते हैं।

ऐसे अनेकों स्थिति-अध्यवसाय संबंधी अनुभाग-अध्यवसाय स्थानों के हो जाने पर अनुभाग-अध्यवसाय स्थानों का प्रमाण दुगुना होता है । याने द्वितीय गुणहानि प्रारंभ होती है। इसके पूर्व प्रथम गुणहानि ही चल रही थी।

द्वितीय गुणहानि प्रारंभ होने पर चय का प्रमाण भी दुगुना हो जाता है। ऐसी अनेकों गुणहानियाँ अनुभाग-अध्यवसाय स्थानों में बनती हैं।

सूत्र

यहाँ पर गुणहानि आयाम बहुत बड़ा है । इतने अनुभाग स्थान आगे जाने पर परिणामों की संख्या दुगुणी होती है – ऐसा जानना ।

गुणहानि के नियम, सूत्र आदि पूर्ववत् ही हैं ।

जघन्य स्थिति संबंधी अनुभाग-बंध-अध्यवसायस्थान

= असंख्यात लोक × असंख्यात लोक

स्थिति

= जघन्य स्थिति को कारणभूत स्थितिबंध-अध्यवसाय-स्थान के अनुभाग-स्थान।

यहाँ दृष्टांत में 12 माने हैं । वास्तविक गणित में = असंख्यात लोक

नाना गुणहानि

$$= \frac{\text{आवली}}{\text{असंख्यात} \times \text{असंख्यात}}$$

गुणहानि आयाम

$$= \frac{\text{असंख्यात लोक}}{\frac{\text{आवली}}{\text{असंख्यात} \times \text{असंख्यात}}} = \text{असंख्यात लोक}$$

अन्योन्याभ्यस्त राशि

$$= \frac{\text{आवली}}{\text{असंख्यात}}$$

www.JainKosh.org

अनुभाग-अध्यवसायस्थानों का तात्पर्य

जघन्य स्थिति (10) के जघन्य स्थितिबंध अध्यवसायस्थान (S1) के जघन्य अनुभाग अध्यवसायस्थान सबसे कम हैं । यह यहाँ प्रथम निषेक कहलाता है । इसका प्रमाण भी असंख्यातलोक है ।

इस प्रथम निषेक से द्वितीय निषेक याने द्वितीय अनुभागबंध के अध्यवसाय संबंधी परिणाम एक चय अधिक हैं । उससे तृतीय अनुभाग-अध्यवसायस्थान संबंधी परिणाम एक चय अधिक हैं ।

प्रथम स्थिति-अध्यवसाय (S1) संबंधी अनुभागबंध-अध्यवसायस्थान समाप्त होने पर जघन्य स्थिति (10) संबंधी द्वितीय स्थिति-अध्यवसायस्थान (S2) संबंधी जघन्य अनुभाग स्थान के अध्यवसायस्थान (A1) प्रारंभ होते हैं । ये भी एक-एक चय बढ़ते हुए जाते हैं ।

इसके सारे अनुभाग-अध्यवसायस्थान समाप्त होने पर तृतीय स्थिति-अध्यवसाय (S3) संबंधी जघन्य अनुभागस्थान के अध्यवसायस्थान प्रारंभ होते हैं । ये भी एक-एक चय बढ़ते हुए जाते हैं।

इस प्रकार अनेकों स्थिति-अध्यवसायस्थान संबंधी अनुभागस्थान समाप्त होने पर जहां प्रथम निषेक से दुगुणे परिणाम पाये जाते हैं, वहाँ द्वितीय गुणहानि का प्रथम निषेक प्राप्त होता है । वहाँ चय भी दुगुणा हो जाता है । इस प्रकार चय बढ़ते-बढ़ते गुणहानि समाप्त होती है ।

इस प्रकार असंख्यात लोक प्रमाण स्थिति-अध्यवसाय-स्थानों में असंख्यात लोक × असंख्यात लोक प्रमाण सर्व अनुभाग-अध्यवसायस्थान होते हैं ।

ऐसे जघन्य स्थिति संबंधी अंतिम अनुभाग-अध्यवसायस्थान तक $\frac{\text{आवली}}{\text{असंख्यात}\times\text{असंख्यात}}$ गुणहानियां पूरी होती हैं ।

अंतिम अनुभाग-अध्यवसायस्थान में भी असंख्यात लोक प्रमाण परिणाम प्राप्त होते हैं ।

सर्व निषेकों का जोड़ असंख्यात लोक × असंख्यात लोक होता है ।

गुणहानि यथायोग्य अनेकों स्थितिबंध-अध्यवसायस्थान पूर्ण होने पर समाप्त होती है क्योंकि गुणहानि का आयाम $\equiv \partial$ है ।

*यहाँ आचार्यों के मतांतर से अनुभाग-अध्यवसायस्थान में नाना गुणहानि शलाका नहीं है।

यह सब प्रथम स्थिति भेद के लिए कहा ।

इसी प्रकार द्वितीय आदि स्थिति भेद के लिये भी जानना चाहिये ।

तत्तो कमेण वड्ढदि, पडिभागेण य असंखलोगेण । अवरट्ठिदिस्स जेट्ठट्ठिदिपरिणामो त्ति णियमेण ॥964॥

- अर्थ—उसके बाद क्रम से जघन्य स्थिति के जघन्य परिणामसंबंधी प्रथम निषेकरूप अनुभाग-अध्यवसायस्थान से लेकर उत्कृष्ट स्थिति के उत्कृष्ट परिणामसंबंधी अनुभाग-अध्यवसायस्थान तक असंख्यात लोकरूप प्रतिभागहार से बढ़ते-बढ़ते अनुभाग-अध्यवसायस्थान नियम से जानने चाहिये ॥964॥

द्वितीय आदि स्थिति-भेदों के अनुभाग-अध्यवसायस्थान

जितने जघन्य स्थिति संबंधी अनुभाग-अध्यवसायस्थान हैं, उससे (जघन्य स्थिति + 1 समय) संबंधी अनुभाग-अध्यवसायस्थान एक चय अधिक हैं ।

उससे अगले स्थिति-भेद संबंधी अनुभाग-अध्यवसायस्थान एक चय अधिक हैं ।

इस प्रकार अंतिम उत्कृष्ट स्थिति संबंधी अनुभाग-अध्यवसायस्थान एक-एक चय से बढ़ते हुये जाते हैं ।

चय का प्रमाण असंख्यात लोक है ।

www.JainKosh.org

गोम्मटसंगहसुत्तं, गोम्मटदेवेण गोम्मटं रइयं ।
कम्माण णिज्जरट्ठं, तच्चट्ठवधारणट्ठं च ॥965॥

- अर्थ—यह जो गोम्मटसार का ग्रन्थ संग्रहरूप सूत्र है
- वह श्रीवर्द्धमान नामा तीर्थंकरदेव ने
- नय और प्रमाण के विषय को लेकर
- ज्ञानावरणादि कर्मों की निर्जरा के लिये तथा तत्त्वार्थ के स्वरूप का निश्चय होने के लिये रचा है ॥965॥

जम्हि गुणा विस्संता, गणहरदेवादिइड्ढिपत्ताणं ।
सो अजियसेणणाहो, जस्स गुरू जयउ सो राओ ॥966॥

- अर्थ— बुद्धि आदि ऋद्धि को प्राप्त गणधर-देवादि मुनियों के गुण जिसमें विश्राम पाकर ठहरे हुए हैं
- ऐसे अजितसेन आचार्य नामा मुनिनाथ जिसके व्रत (दीक्षा) देने वाले गुरु हैं,
- वह राजा चामुंडराय सर्वोत्कृष्टपने से जय पावो ॥966॥

सिद्धंतुदयतडुग्गय-णिम्मलवरणेमिचंदकरकलिया ।
गुणरयणभूसणंबुहि-मइवेला भरउ भुवणयलं ॥967॥

- अर्थ—सिद्धांतरूपी उदयाचल पर ज्ञानादि से उदयमान हुए
- निर्मल और उत्कृष्ट श्रीनेमिनाथ तीर्थंकररूपी चन्द्रमा की अथवा नेमिचन्द्राचार्यरूपी चंद्रमा की वचनरूपी किरणों से वृद्धि को प्राप्त
- गुणरूपी रत्नों से शोभित ऐसे चामुंडरायरूप समुद्र की बुद्धिरूपी वेला इस पृथ्वीतल को पूरित करो अथवा समस्त जगत् में अतिशय से विस्तार पाओ ॥967॥

ww ai sh.o

गोम्मटसंगहसुत्तं, गोम्मटसिहरुवरि गोम्मटजिणो य ।
गोम्मटरायविणिम्मिय, दक्खिणकुक्कुडजिणो जयउ ॥968॥

- अर्थ—गोम्मटसार संग्रहरूप सूत्र,
- गोम्मटशिखर के ऊपर चामुंडराय राजा द्वारा बनवाये गये जिनमंदिर में विराजमान एक हाथप्रमाण इंद्रनीलमणि से निर्मित नेमिनाथ तीर्थंकरदेव का प्रतिबिंब तथा
- उसी चामुंडराय द्वारा निर्मापित लोक में रूढ़िकर प्रसिद्ध 'दक्षिण कुक्कुट' नामक जिन का प्रतिबिंब जयवंत प्रवर्तो ॥968॥

www.JainKosh.org

जेण विणिम्मय पडिमा-वयणं सव्वट्ठसिद्धिदेवेहिं ।
सव्वपरमोहिजोगिहिं, दिट्ठं सो गोम्मटो जयउ ॥969॥

- अर्थ—जिस राजा द्वारा बनवाया गया जिनप्रतिमा का मुख
- सर्वार्थसिद्धि के देवों के द्वारा तथा सर्वावधि, परमावधिज्ञान के धारक योगीश्वरों के द्वारा देखा जाता है
- वह 'चामुंडराय' सर्वोकृष्टपने से प्रवर्तमान रहे ॥969॥

www.JainKosh.org

वज्जयलं जिणभवणं, ईसिपभारं सुवण्णकलसं तु ।
तिहुवणपडिमाणेक्कं, जेण कयं जयउ सो राओ ॥970॥

- अर्थ—जिसका, अवनितल (पीठबंध) वज्र सरीखा है,
- जिसका ईषत्प्राग्भार नाम है,
- जिसके ऊपर सुवर्णमयी कलश है तथा
- तीन लोक में उपमा देने योग्य ऐसा अद्वितीय जिनमंदिर जिसने बनवाया
- ऐसा राजा चामुंडराय जयवंत वर्तो ॥970॥

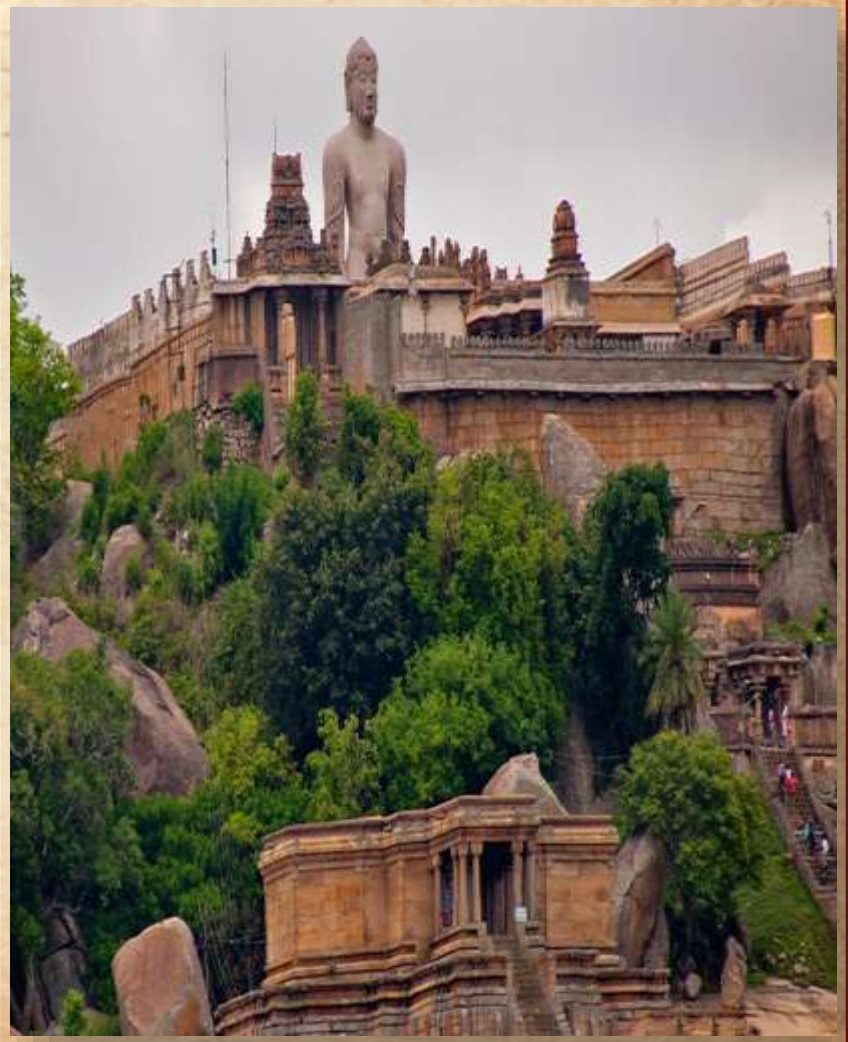

www.JainKosh.org

जेणुब्भियथंभुवरिम-जक्खतिरीटग्गकिरणजलधोया ।
सिद्धाण सुद्धपाया, सो राओ गोम्मटो जयउ ॥971॥

- अर्थ—जिसने चैत्यालय में उत्तुंग स्तम्भ के ऊपर स्थित
- यक्ष के मुकुट के अग्रभाग से निकलने वाली किरणोंरूप जल से
- सिद्ध-परमेष्ठियों के शुद्ध चरण-युगल धोये हैं,
- ऐसा राजा चामुंडराय जय को पाओ ॥971॥

गोम्मटसुत्तल्लिहणे, गोम्मटरायेण जा कया देसी ।
सो राओ चिरकालं, णामेण य वीरमत्तंडी ॥972॥

- अर्थ—गोम्मटसार ग्रंथ के गाथासूत्र लिखने के समय जिस गोम्मट राजा ने देशीभाषा अर्थात् स्थानीय कर्णाटक में वृत्ति (टीका) बनाई है
- वह वीरमार्तण्ड नाम से प्रसिद्ध चामुंडराय चिरकाल तक जयवंत प्रवर्तो ॥972॥

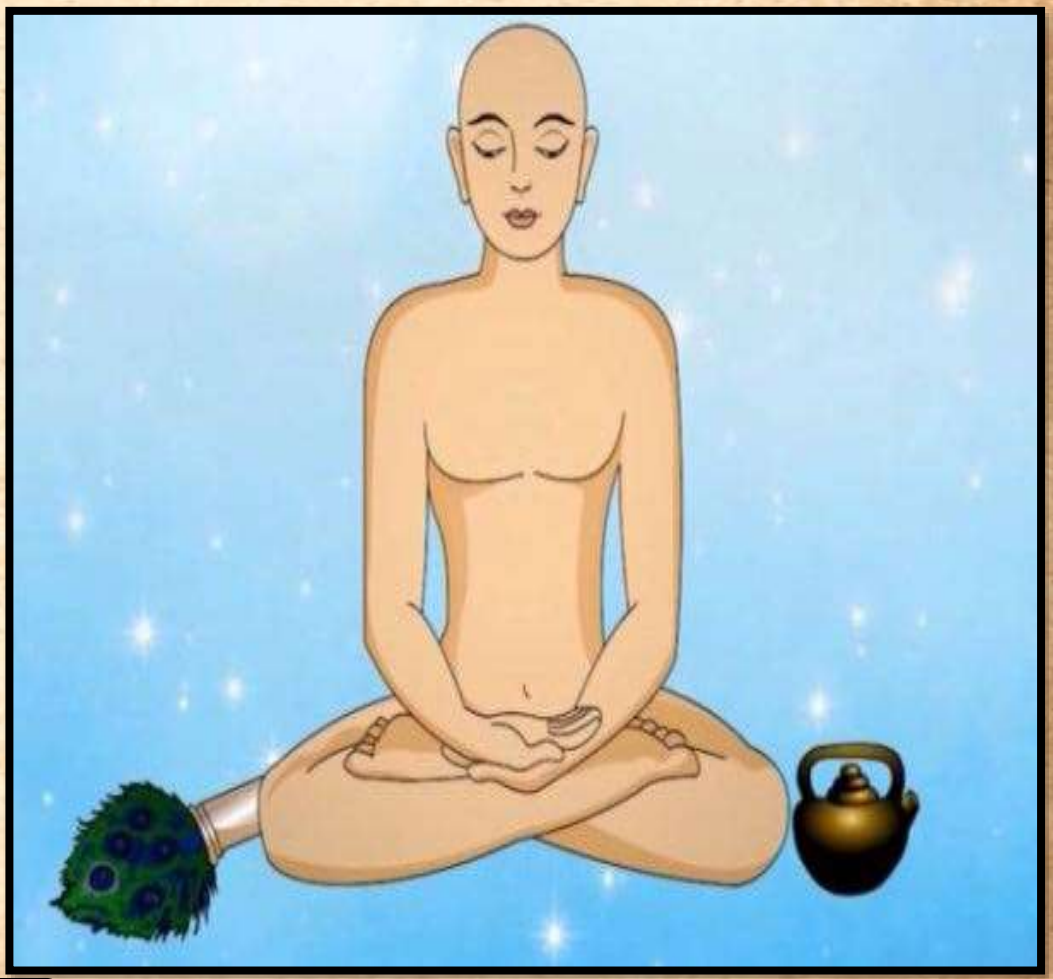

www.JainKosh.org

- Reference : गोम्मटसार कर्मकांड, सम्यग्ज्ञान चंद्रिका, धवल पुस्तक 10

Presentation developed by

Smt. Sarika Vikas Chhabra

- For updates / feedback / suggestions, please contact
  - Sarika Jain, sarikam.j@gmail.com
  - www.jainkosh.org
  - ☎: 94066-82889

- इसी विषय के विडियो लेक्चर हमारे चैनल पर उपलब्ध हैं । आप अवश्य लाभ लें । www.Jainkosh.org/wiki/Videos पेज पर जाएँ एवं प्लेलिस्ट चुनें ।